REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 10 | JULY - 2018

पंडित भातखण्डे कृत श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् ग्रंथ का विश्लेषणात्मक अध्ययन

दिनेश कुमार देवदास
सहायक प्राध्यापक (गायन)
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़.

सारांशः–

ग्रंथकार के नाम, ग्रंथ काल तथा साथ ही ग्रंथ में उद्घृत् प्राचीन ग्रंथों के नामों का उल्लेख करते हुए इस ग्रंथ को वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत का शास्त्रीय आधार ग्रंथ बताया है। लक्ष्य एवं लक्षण संगीत की व्याख्या। विषय–वस्तु के अन्तर्गत ग्रंथ में वर्णित अध्यायों का उल्लेख किया गया है। ग्रंथ मुख्य रूप से दो अध्याय में विभक्त है। प्रथम स्वराध्याय एवं द्वितीय रागाध्याय। स्वराध्याय के अन्तर्गत ग्रंथकार का परिचय, प्रचलित संगीत पद्धति, संगीत की परिभाषा, भेद, नाद, नाद की परिभाषा, नाद के स्थान आदि की चर्चा की गई है। तत्पश्चात् श्रुति प्रकरण में श्रुति की परिभाषा, भेद, नाम एवं स्थान का उल्लेख करते हुए विभिन्न ग्रंथों में वर्णित श्रुतियों की चर्चा की गई है। तदोपरान्त भरत के श्रुति निदर्शन पर संक्षिप्त टिप्पणी। ग्राम प्रकरण, विभिन्न ग्रंथों द्वारा ग्राम की परिभाषा। स्वर प्रकरण– विभिन्न ग्रंथों का नामोल्लेख जिसमें शुद्ध–विकृत स्वरों की चर्चा की गई। मूर्च्छना की परिभाषा, मेल प्रस्तार सम्बन्धित ग्रंथों का नामोल्लेख। स्वराध्याय के अन्त में तान प्रकरण के अन्तर्गत तान की परिभाषा, तान प्रस्तार, खण्डमेरु आदि की चर्चा की गई है। द्वितीय रागाध्याय अध्याय है, जिसके अन्तर्गत दस थाटों के नाम तथा इन थाटों के अन्तर्गत वर्गीकृत रागों के नामों का उल्लेख किया गया है। प्रकीर्ण प्रकरण में वाग्येकर के लक्षण तथा भेद, गायक के गुण–दोष पर विचार करते हुए अन्त में ग्रंथ रचना के उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तावनाः–

श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् 'लक्ष्य' अर्थात् प्रचलित संगीत का प्रमाणिक ग्रंथ। यह प्रथम आधार ग्रंथ पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी द्वारा संस्कृत में लिखा गया है। रचियता के रूप में इन्होनें अपना उपनाम 'चतुरपंडित' रखा है। तथा इसका काल सन् 1909 ई0 है। 'उन्होंने संगीत से सम्बन्धित संस्कृत के सद्राग–चन्द्रोदय, संगीत–रत्नाकर, राग–मंजरी, राग–विबोध, चर्तुरदण्डि–प्रकाशिका, संगीत–दर्पण, स्वरमेल–कलानिधि, संगीत–सारामृत, राग–तरंगिणी, संगीत–पारिजात, राग–माला आदि अनेक ग्रंथों का प्रगाढ़ अनुशीलन अध्ययन करके संगीत के प्रचलित प्रयोग धारा एवं पंरातन शास्त्रीय मान्यताओं में सामन्जस्य स्थापित करने का स्तुत्व प्रयास किया है। फलतः उन चतुर पंडित के द्वारा ''श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्'' जैसे गौरवशाली ग्रंथ का प्रणयन हुआ। यह ग्रंथ वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत का शास्त्रीय आधार है।'[1]

लक्ष्य–संगीत का नामः– 'लक्ष्य या लक्षण ये दो शब्द सामान्यतः तो एक ही है, पहला यह कि किसी कला का जो स्वरूप प्रचार में है उस रूप में उस कला के बारे में जानना 'लक्ष्य' कहलाता है और दूसरा यह कि ग्रंथों में किसी कला के लक्षण दिए हुए हैं उनके आधार पर उस कला के बारे में ज्ञान प्राप्त करना लक्षण कहलाता है। भरत लक्ष्य का वर्णन करते हैं और शारंगदेव लक्षण का। जो वर्तमान में लक्ष्य है, कालान्तर में परिवर्तित होते–होते उस लक्ष्य के लक्षण मात्र रह जाते हैं और प्रचार में भिन्नता आ जाती है। प्रथम शताब्दी के आसपास

भारत के नाट्यशास्त्र लक्ष्य को ध्यान में रखकर लिखा गया। तेरहवीं शताब्दी में संगीतरत्नाकर के समय तक जाति गान को जानने का माध्यम मात्र लक्षण रह गए अतः शारंगदेव को उसके लक्षण से ही संतोष करना पड़ा क्योंकि उस समय तक देशीराग लक्ष्य में आ चुके थे।'[2]

'भातखण्डे जी लक्ष्य–लक्षण सम्मत संगीत का वर्णन करना चाहते थे उन्होनें देखा कि ग्रंथों में रागों का लक्षण अलग है और प्रचार में जो लक्ष्य है वह अलग है अतः भातखण्डे जी ने लक्ष्य–लक्षण में समन्वय स्थापित करने के लिए एक ग्रंथ की रचना की और अपने इस ग्रंथ का नाम ''लक्ष्यसंगीत'' रखा। आदर प्रकट करने के लिए 'श्रीमत्' लगाया जिससे 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' हो गया।'[3]

विषय–वस्तुः– यह ग्रथं मुख्य रूप से दो अध्याय में विभक्त हैः– (1) स्वराध्याय एवं (2) रागाध्याय। अंत में वाग्येयकार, गायक के गुण–दोष, सुशारीर, तत्कालीन संगीत की स्थिति और लक्ष्यसंगीत की रचना करने का उद्देश्य दिया है।

स्वराध्यायः– स्वराध्ययाय के अन्तर्गत ग्रंथ के आरम्भ में पंडित भातखण्डे जी ने अपना परिचय दिया है। तदोपरान्त भारत में प्रचलित दो संगीत पद्धति उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत का वर्णन किया है। संगीत की परिभाषा के लिए ग्रंथोल्लेखित विभिन्न परिभाषाओं का अपने ग्रंथ में उल्लेख किया है। संगीत के दो भेद बताये हैं– (1) मार्गी एवं (2) देशी संगीत। इसके पश्चात् पंडित जी ने संगीत के महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथों पर समीक्षात्मक टिप्पणी किया है। श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् की रचना का उद्देश्य, संगीत–प्रशंसा। नाद के अन्तर्गत नाद की परिभाषा–गीत नादमय होता है। वाद्य का महत्व नाद की अभिव्यक्ति से ही होता है। नृत्य, गीत एवं वाद्य का अनुगामी होता है। इस प्रकार ये तीनों नाद के अधीन है।''न्यूटन ने कहा है कि–'Sound since they arise in tremulous bodies are no other then waves propagated in the ear.'' अर्थात् कम्पमान द्रव्य से ही उत्पन्न होती है, इसलिए वह वायु में फैली तरंगों से अलग नहीं है। संगीत का मूलभूत उपकरण ध्वनि है। ध्वनि की उत्पत्ति कम्पन से होती है। मनुष्य कंठ के भीतर जो स्वर–तंत्रियाँ हैं, उनके कम्पन से ही ध्वनि निकलती है।''[4] ''व्यापक रूप से नाद के अन्तर्गत वह समस्त ध्वनियाँ आयेंगी जो सुनने में अच्छी लगती है और नहीं भी। कानों को जाध्वनि अच्छी है उसमें रन्जक तत्व होते हैं, यानी ये ध्वनियाँ मन को आनन्द पहुँचाने वाली होती हैं। उन रन्जक ध्वनियों का प्रयोग जब संगीत में किया जाता है तो एसे संगीतोपयोगी ध्वनि कहते हैं। संगीतोपयोगी इन ध्वनियों का ही पारिभाषिक नाम 'नाद' है। एवं नाद स्थान– व्यवहारिक रूप में नाद के तीन स्थान माने गये हैंः– हृदय में मंद्र स्थान, कंठ में मध्य और मस्तिष्क से तार स्थान । ये तीनों क्रमशः दुगुने ऊँचे होते हैं।''[5]

श्रुति–प्रकरणः– श्रुति प्रकरण की चर्चा स्वराध्ययाय के अन्तर्गत ही किया है। श्रुति की परिभाषा– सुनाई देने के कारण इन्हें श्रुति कहा गया है तथा इसके 22 भेद हैं। ऐसा माना जाता है कि हृदय के ऊपर 22 तिरछी नाड़ीयाँ है, जिन पर वायु के आघात हाने पर श्रुतियाँ उत्पन्न होती हैं। ये श्रुतियाँ क्रमशः उच्चतर होती जाती हैं। इसी प्रकार कंठ एवं शीर्ष से 22–22 श्रुतियाँ मानी गई है।**''श्रुत्यः स्युः स्वराभिन्नाः श्रावणत्येन हुतुना।''**[6] श्रुतियाँ के कारण 'श्रावणत्व' कहा है अर्थात् जो सुनी जा सकती है वह श्रुति कहलाता है। श्रुति लक्षण– लक्ष्य संगीत के विद्वानो ने नित्य गीतोपयोगिता अभिज्ञेयता को श्रुति का पर्याप्त लक्षण माना है। मंद्र, मध्य एवं तार स्थानों के 22–22 श्रुतियाँ मानी गई है। श्रुति को संगीत के आदि सप्त–स्वरों की जननी माना गया है। आचार्य मतंग ने अपने बृहद्देशी ग्रंथ में श्रुति को ध्वनि का ही पर्याय माना है– श्रुयन्त इति श्रुतयः। वीणा पर श्रुति–प्रमाण आदि का निदर्शन–संगीतरत्नाकर के अनुसार इस पर कल्लिनाथ का टिका, भरतनाट्यशास्त्र अनुसार प्रमाण श्रुति निदर्शन– ग्रामगत श्रुतियों, श्रुतिप्रमाण तथा षड्जादि, सप्तस्वरों की श्रुतियों की संख्या का नाट्यशास्त्रकार आचार्य भरत ने वीणा पर निदर्शन किया है। इस निदर्शन–प्रयोग को अल्प परिवर्तन के साथ पंडित शारंगदेव ने भी स्वीकार किया है। 'चतुर पंडित' ने भी भरतनाट्यशास्त्रकार, संगीतरत्नाकर के सिंहभूपाल एवं कल्लिनाथ कृत टीकाओं के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। संगीतरत्नाकर के अनुसारः– श्रुतियों को स्पष्ट करने के लिए दो सामान वीणा जिसके नाद भी सामान हो दोनों वीणाओं में 22–22 तंत्रियाँ सामान हों। उन दोनों के प्रथम तंत्रियों का मंद्रतम् ध्वनि में मिलाया जायें। प्रथम एवं द्वितीय तंत्री से उत्पन्न ध्वनि एक सामान सुनाई दे तथा उन ध्वनि में निरंतरता होनी चाहिये। इस विधि से वीणा के अन्य तंत्रियों की मिलाना चाहिये। कल्लिनाथ

के अनुसारः– उर्पयुक्त श्रुति निदर्शन के आंशिक परिवर्तन कर कल्लिनाथ ने इसे इस प्रकार प्रस्तुत किया हैः– पहली तंत्री अतयन्त मंद्र स्वर वाली तथा दूसरी तंत्री कुछ ऊँची मिलाया जाय। निरन्तरता से यहाँ पर आशय है इसी ध्वनि का किंचित् ऊँची व्यवस्थापना।

टिप्पनीः–पहले तार एवं दुसरे तार अंतराल की ध्वनि इतनी सूक्ष्म होना चाहिये कि उस अंतराल के मध्य किसी और ध्वनि की कोई गुँजाइश ना हो। इसी निरन्तरता की ध्वनि का स्थापना होनी चाहिये। पहली एवं दूसरी तंत्रियों की ध्वनियो के मध्य पूर्वोक्त दोनों ध्वनियो से विलक्षण या भिन्न संभावना प्रतित न हों। जो पूर्वोक्त पहली तंत्री की ध्वनि से कुछ ऊँची तथा दुसरी तंत्री की ध्वनि से से नीची। ऐसी मध्यवर्ती ध्वनि सुनाई न दे तथा इस ध्वनि का निरन्तरता बनाये हुए दूसरी तंत्री को थोड़ा कसते हुए उसकी ध्वनि का पहली तंत्री की ध्वनि से किंचित् उच्च किया जाना चाहिये। यहाँ निरन्तरता ध्वनियों की ही बतायी गई हैं। संगीतरत्नाकर के प्रमाण श्रुति पर सिंह भूपाल की टिका। संगीतरत्नाकर के अनुसार श्रुतियों पर स्वर स्थापना की विधि। तदोपरान्त सारणा–विधि, सारणा–फल, श्रुतियों के नाम– तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा, छन्दोवती, दयावती, रंजनी, रक्तिका, रौद्री, क्रोधी, वज्रिका, प्रसारणी, प्रीति, मार्जनी, क्षिति, रक्ता, सन्दीपिनी, अलापिनी, मदन्ती, रोहिणी, रम्या उग्रा, क्षोभिणी, तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा, छन्दोवती तथा स्वरों में श्रुतियों का वितरण– षड्ज, मध्यम एवं पंचम प्रत्येक की चार–चार श्रुतियाँ हैं। ऋषभ और धैवत की तीन–तीन श्रुतियाँ हैं तथा निषाद एवं गांधार की दो–दो श्रुतियाँ बताये हैं।

ग्राम–प्रकरणः–ग्राम की परिभाषा, ग्राम–भेद–संगीतरत्नाकर के अनुसार– ग्राम स्वरों का वह समूह है, जो मूर्च्छना आदि का आधार है। इस धरातल पर दो ग्राम हैं प्रथम षड्जग्राम एवं द्वितीय मध्यमग्राम। उनके लक्षण इस प्रकार बताए गये हैं पंचम अपनी चतुर्थश्रुति पर स्थित होने के कारण, तथा उसकी अपनी उपान्त्य श्रुति पर होने उस ग्राम को मध्यम ग्राम कहते हैं। षड्जग्राम में धैवत त्रिश्रुतिक एवं मध्यमग्राम चतुःश्रुतिक होता है। नारदोक्त गांधार ग्राम में जब गांधार ऋषभ एवं मध्यम की एक–एक श्रुति लेता है, और धैवत पंचम की तथा निषाद धैवत और षड्ज की एक–एक श्रुति लेता है तब गांधार ग्राम बन जाता है, जो पृथ्वी पर नहीं है स्वर्गलोक में विद्यमान है। संगीतरत्नाकर के ही भाँति अन्य ग्रंथों में भी ग्राम की परिभाषा, ग्राम–भेद आदि का उल्लेख किया है जो निम्नानुसार है– नाट्शास्त्र के अनुसार, संगीत–पारिजात तथा रागतत्वविबोध के अनुसार, राग–मंजरी के अनुसार, सद्राग–चन्द्रोदय के अनुसार, राग–विबोध के अनुसार, चर्तुरदण्डिप्रकाशिका के अनुसार, संगीतसारामृतानुसार ग्रंथकार की टिप्पणी की है।

स्वर–प्रकरणः– विकृतत्व का लक्षण, प्रचलित संगीत के विकृत तथा अविकृत स्वर। तत्पश्चात् प्राचीन अर्वाचीन ग्रंथों में उल्लेखित शुद्ध–विकृत स्वर– संगीतरत्नाकर, संगीतदर्पण, संगीतदर्पण के स्वरों पर टिप्पणी, स्वरमेलकलानिधि, रागविबोध तथा सोमनाथ की 'विवेक' टिका, के अनुसार, चर्तुरदण्डिप्रकाशिका तथा मध्यमेल वीणा पर श्रुति निदर्शन संगीतसारामृत, रागतरंगिणी तथा हृदयकौतुक के स्वरों पर टिप्पणी, हृदयप्रकाश तथा वीणा पर स्वर स्थान निरूपण। रागतत्वविबोध के स्वरों पर टिप्पणी, सद्राग–चन्द्रोदय, रागमाला, रागमन्जरी तथा आधुनिक उत्तर भारतीय पद्धति के स्वरों पर विचार किया गया है। प्राचीन काल से लेकर अब तक पूरे विश्व में सात शुद्ध स्वर माने जाते हैं किन्तु विकृत स्वरों की संख्या में मतभेदों का उल्लेख करते हुए विभिन्न मतो के अनुसार भरत के दो, शारंगदेव के बारह, अहोबल के बाईस, लोचन के दस, रामामात्य के सात एवं व्यंकटमखी के पॉच बताया है। पंडित भातखण्डे जी ने पॉच विकृत तथा सात शुद्ध स्वर कुल बारह स्वर माना है।

मूर्च्छना–मेल–राग रचना प्रकरणः– इस प्रकरण के अन्तर्गत मूर्च्छना की परिभाषा– सप्त स्वरों के क्रमिक आरोहवारोह को संगीतरत्नाकर में मूर्च्छना कहा गया है। तत्पश्चात् मेल प्रस्तार के नियम बताया है। मध्यकालीन ग्रंथकारों के अनुसार मेल–प्रस्तार पर विचार किया गया है, जैसे– संगीतसारामृतानुसार एवं चर्तुरदण्डिप्रकाशिका। पंडित व्यंकटमखी का मेलों पर अभिमत का उल्लेख किया गया है। राग रचना किस प्रकार की जाती है रागतत्वविबोध के अनुसार बताया गया है। मेलगत नवविध मूर्च्छनाओं का वर्णन– मेलगत सप्त स्वरों के आरोह

एवं अवरोह दानों के सम्पूर्ण, षाडव एवं औडुव नामक तीन प्रकारों द्वारा नौ सम्मिश्रण राग बताये है। मेलों के द्वारा उत्पन्न हो सकने वाले रागों का निर्णय पर विचार किया गया है।

तान–प्रकरणः– तान की परिभाषा, दो भेद– शुद्ध एवं कूट तान एवं प्रयोजन। कूटताने तथा प्रस्तार नियम संगीरत्नाकर के अनुसार– व्युत्क्रम से लिए गये स्वरों वाली सम्पूर्ण अथवा अपूर्ण मूर्च्छनाओं को कूटतान कहते हैं। उनकी संख्या हम बता रहे हैं। प्रत्येक मूर्च्छना से क्रम के साथ निर्मित होने वालो पूर्ण कूट तानों की संख्या 5040 हैं। षाडव की कूट तान 720 एवं औडुव की 120 बतायी गई हैं। चतुःस्वरीय कूट ताने 24, त्रिस्वरीय 6, और एकस्वरीय का 1 कूट तान होती हैं। खण्डमेरु तथा उसका उपयोग–संगीतदर्पण के अनुसार– नष्ट एवं उद्दिष्ट ज्ञात करने के लिए खण्डमेरु बताया गया है।

रागाध्यायः– इन्होंने इस अध्याय में पंडित व्यंकटमखी के बहत्तरमेल में से केवल दस थाट ही स्वीकार किया। इनके दस थाट के नाम निम्नानुसार हैः– (1) कल्याण, (2) बिलावल, (3) खमाज, (4) भैरव, (5) पूर्वी, (6) मारवा, (7) काफी, (8) आसावरी, (9) भैरवी, एवं (10) तोड़ी तथा हन्हीं दस मेलों के अंतर्गत लगभग सवा सौ रागों को वर्गीकृत किया है। दस मेलों का क्रम रागो के समय को ध्यान में रखकर किया है। दस मेल जन्य रागों के नाम– कल्याणमेलजन्य राग– ईमन (अथवा यमन), शुद्ध कल्याण, भूपाली, चन्द्रकान्ता, जतकल्याण (जैतकल्याण), पुरियाकल्याण, हिन्दोल, मालश्री, केदार, हम्मिर (हमीर), कामोद, छायानाट (छायानट), श्यामकल्याण तथा गौड़सारंग– इतने राग कल्याणोत्पन्न हैं। बेलावलीमेलजन्य राग– विद्वानों के अनुसार निम्नलिखित राग बिलावलमेल जन्य राग हैंः– बिलावल, अल्हैया (–बिलावल), शुक्ल बिलावल, देवगिरी (–बिलावल), यमनी (–बिलावल), दुर्गा, सरपरदा, कुकुभ (–बिलावल), नटबिलावल, लच्छासाख, शंकरा, देशकार, बिहाग, हेम कल्याण, मलुहा (–केदार), नट, माण्ड, गुणकली एवं पहाड़ी। खमाजमेलजन्य राग– खम्माज (खमाज), झिन्झुटी, सोरटी (सोरठ), देस, खम्बावती, तिलX, दुर्गा, रागेश्वरी, जयावन्ती (जयजयवन्ती), गारा और तिलक कामोद– ये प्रचलित राग खमाजमेलजन्य राग कहे जाते हैं। भैरवमेलजन्य राग–भैरव, कलिX, (कलिXड़ा, मेघरन्जनी, सौराष्ट्र (–भैरव), रामकली, प्रभात, विभास, बंगाल (–भैरव), शिवभैरव (शिवमतभैरव), आनन्दभैरव, अहीरभैरव, ललितपंचम तथा गुणक्री (गुणकली) ये प्रचलित राग भैरवमेलजन्य राग कहे जाते है। पूर्वीमेलजन्य राग– पूर्वी, गौरी, रेवा, श्री, दीपक, त्रिवेणी, मालवी, टंकी, जेताश्री (जैतश्री), बसन्त, पूरिया– धनाश्री तथा परज इन रागों को संगीतज्ञ पूर्वी मेल जन्यराग मानते हैं। मारवामेलजन्य राग– मारवा, पूरिया, ललिता (ललित), सोहनी, वरारी (बराटी), जैत्र (जैत), भंखार, विभास, भट्टियार (भटियार), साजगिरी, मालीगौरा, पंचम तथा ललितागौरी ये राग मारवामेलजन्य राग कहे गये हैं। काफीमेलजन्य राग– धनाश्री, सैंधवी (सिन्दूरा), काफी, धानी, भीमपलासी, प्रदीपकी (पटदीप), पीलू, हंसकंकणी, बागेश्वरी (बागेश्री), बहार, सूहा, सुघराई, देशाख्य (देवशाख), कौशिक (कौसी), शहाना, नायकी (–कान्हड़ा), मध्यमादिसारंग, शुद्धसारंग, वृन्दावनीसारंग, (–सारंग), सामन्त(–सारंग), मीयां सारंग, बड़हंस (–सारंग), शुद्धमल्लार, पटमन्जरी, गौड़मल्लार, सूरमल्लार, रामदासीमल्लार, मियाँमल्लार तथा मेघमल्लार–ये काफीमेलजन्य राग के अन्तर्गत आते है। आसावरीमेलजन्य राग– आसावरी, जौनपुरी गान्धारी, देशी, खट, सिन्धुभैरवी, कौशिक (कौशी कान्हड़ा), दरबारी कान्हड़ा, अड्डाना (अड़ाना), तथा यवन राग झीलप– विद्वजन इन्हें आसावरी मेल जन्यराग मानते हैं। भैरवीमेलजन्य राग– भैरवी, मालकोश (मालकौंस) तथा बिलासखानी तोड़ी को संगीतज्ञ भेरवी मेल से उद्भूत राग मानते हैं। तोड़ीमेलजन्य राग– तोड़ी, गुर्जरी तोड़ी (– तोड़ी) तथा मुलतानी–ये सुप्रसिद्ध राग तोड़ी मेल के राग हैं।

प्रकीर्ण–प्रकरणः– संगीतरत्नाकरोक्त वाग्येयकार लक्षण– 'वाक्' को 'मातु' तथा 'गेय' को 'धातु' कहते हैं। वाक्' तथा 'गेय'दोनों का रचना करते हैं उसे वाग्येयकार कहते हैं। संगीतरत्नाकरोक्त उत्तम वाग्येयकार 28 हैंः–यथा– शब्दानुशासनज्ञान, अभिधानप्रविणता, छन्दःप्रभेदवेदित्व, अलंकारकौशल, रसाभावपरिज्ञान, देशस्थितिचातुर्य, अशेषभाषाविज्ञान, कलाशास्त्रकुशलता, तुर्यत्रितयचातुर्य, ह्रद्यशरीरशालिता, लयतालकलाज्ञान, अनेककाकुविवेक, प्रभूतप्रतिमोद्भेदभावत्व, सुभगगेयतता, देशीराअभिज्ञत्व, वाक्पटुत्व, रागद्वेषपरित्याग, सार्द्रत्व, उचितज्ञता, अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्ध, नूत्नधातुविनिर्मिति–क्षमता, परिचित्तपरिज्ञानं, प्रबन्धप्रगल्भता, द्रुतगीतविनिर्माणयोगता,

पदान्तरविदग्धता, त्रिस्थानगमकपौढ़त्व, आलप्तिर्नपुण्य एवं अवधान। इसके पश्चात् गायक के गुण–दोष का वर्णन किया है।

गायक के गुण– हृद्यशब्द, सुशारीर, ग्रहमोक्षविचक्षण, रारागांगभाषांगक्रियांगोपांगकोविद, प्रबन्धगाननिष्णात, विविधालप्तितत्त्ववित्, सर्वस्थोनोच्चनगमकेध्वनायासलसद्गति, आयत्तकंठ, तालज्ञ, सावधान, जितश्रम, शुद्धच्छायालगभिज्ञ, सर्वकाकुविशेषचित्, अपारस्थायसंचारी, सर्वदोषविवर्जित, क्रियापर, व्यक्तलय, सुघट, धारणान्वित, स्फूर्जन्निर्जवन, हारिरहःकृद्भोद्धुरः एवं सुसम्प्रदाय। मध्यम एवं अधम गायक के लक्षण– जिन गायको में उपर्युक्त गुणों में कुछ गुण कम हो, किन्तु दोष न हों, इसे मध्यम गायक माना जाता है। दोनों से युक्त गायक को श्रीमहामहेश्वर ने अधम गायक माना है। इसके पश्चात् एकल, यमल एवं वृन्द गायन का वर्णन करते हैं। गायिका लक्षण–रूपयौवनसम्पन्ना, अत्यन्त मधुरकण्ठव0ाली दक्ष गायिकाएँ गुणीजन को प्रिय होती हैं। दोषयुक्त गायको के लक्षण– 25 बताये हैं– जो निम्नवत् है–सन्दस्ट, उद्घुस्ट, सुत्कारी, भीत, शंकित, कम्पित, कराली, विकल, काकी, विताल, करभ, उद्भट, झाोम्बक, तुम्बकी, वक्री, प्रसारी, निमीलक, विरस, अपस्वर, अव्यक्त, स्थानभ्रष्ट, अव्यवस्थित, मिश्रक, अनवधान एवं सानुनासिक। सुशारीर के लक्षण– जिस कण्ठ ध्वनि में, अभ्यास के बिना भी, रागाभिव्यक्ति करने की क्षमता हो, उसे सुशारीर कहते हैं, क्योकि उसका उद्भव शरीर के साथ हुआ है। भारतीय संगीत की वर्तमान दशा पर विचार करते हुए श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् के उपसंहारात्मक इस अंश में पंडित भातखण्डे जी ने भारतीय संगीत की वर्तमान दशा एवं उसमें प्राप्त विकृतियों एवं दोषों का मार्मिक विश्लेषण किया है। अन्त में ग्रंथ रचना का उद्देश्य पर प्रकाश डाला है–'ग्रंथकार ने स्वयं भी इसकी रचना का उद्देश्य शिक्षक निर्मित बताया है। अभिप्राय यह है कि संगीत का अध्यापन करने वाले लोग इस ग्रंथ के अध्ययन एव मनन से अपने विषय को अधिक सुस्पष्ट और अधिक सहीं ढ़ंग से हृदयंगम् कर सकते हैं। ऐसे ही शिक्षक सुयोग्य एवं 'सुंशिक्षित' शिक्षक कहे जा सकते हैं। वे छात्रों का, नवीन शिक्षा प्रणाली में अधिक उचित रीति से मार्गदर्शन कर सकते हैं।'[7] अन्त में अपना परिचय के साथ ग्रंथ रचनाकाल तिथि एवं वर्ष का उल्लेख किया है।

निष्कर्ष :–

ग्रंथ के नाम 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' है जो कि यथा नामम् तथा गुणम् है। भातखण्डे जी ने लक्ष्य एवं लक्षण संगीत का समन्वय करने की दृष्टि से इस ग्रंथ की रचना की। उपरोक्त कथनानुसार भरत के लक्ष्य संगीत शारंगदेव के लिए लक्षण संगीत है। ठीक उसी प्रकार काल परिवर्तन एवं जन रूचि के कारण भातखण्डे जी वर्णित कुछ–कुछ राग आदि वर्णित तथ्य लक्ष्य संगीत आज लक्षण संगीत हो गये हैं। जैसे– रागाध्याय में वर्णित कल्याण थाट वर्गीकरण के अन्तर्गत पूरियाकल्याण राग को रखा गया था किन्तु इस राग को अब मारवा थाट में वर्गीकृत किया जाता है। स्वराध्याय में वर्णित नाद, श्रुति आदि लक्षण संगीत हैं। इन्होंने षड़्ज की स्थापना पहली श्रुति पर किया जो कि परम्परागत श्रुति स्थापना विधि से भिन्न है। वर्तमान प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत में इसी स्थापना विधि को अनुकरण किया जाता है। पंडित भातखण्डे जी ने प्रचलित संगीत के प्रचलित रागों को दस थाट में वर्गीकृत किया, जिसे वर्तमान संगीत में अनुसरण किया जा रहा है। रागाध्याय में वर्णित रागों का राग स्वरूप 109 वर्षों के पश्चात् भी जैसा था वैसा ही है उदाहरणार्थ– ग्रंथ में वर्णित राग यमन, भूपाली आदि का स्वरूप पूर्ववत् ही है किन्तु कुछ रागों के स्वरों में भिन्नता के कारण उनके थाट परिवर्तित हो गये हैं। जैसे कि– ललित शुद्ध धैवत के कारण मारवा थाट में रखा गया था किन्तु कोमल धैवत युक्त ललित को वर्तमान में पूर्वी थाट में वर्गीकृत किया जाता है। प्रचलित संगीत में वाग्येकार के गुण एवं भेद, गायक के गुण–दोष आदि को ग्रंथोक्त रूप में ही अनुकरण किया जा रहा है। पडित भातखण्डे जी ने इस ग्रंथ की रचना प्राचीन–अर्वाचीन संगीत के समन्वयक रूप में किया है, जिसके अन्तर्गत सुंशिक्षित समाज को सुशिक्षित शिक्षक प्रदान करना था जिसमें वे सफल रहे। प्रचलित संगीत के अध्ययन–अध्यापन में इस ग्रंथ का महत्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ सूचीः

1 गुणवन्त माधवलाल व्यास –श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् सटीकानुवाद – म0प्र0 हि0ना0अव भोपाल वर्ष –1981 पृ0 क्रं –11

2 डॉ0 तेज सिंह टाक–संगीत जिज्ञासा और समाधान–राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2012–पृष्ठ– 173

3 डॉ0 तेज सिंह टाक –गीत और जिज्ञासा, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2012 – पृष्ठ– 174

4 लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'–संगीत संजीवनी – कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्लीवर्ष –2005 पृ0 कं –111

5 मित्तल पब्लिकेशन– संगीत मंजूषा– नई दिल्ली वर्ष –2005 पृ0 कं –21

6 कलिन्द जी – संगीत पारिजात – संगीत कार्यालय हाथरस – वर्ष –1956 पृ0 कं – 12

7 गुणवन्त माधवलाल व्यास –श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम् सटीकानुवाद – म0प्र0 हि0ना0अव भोपाल वर्ष –1981 पृ0 कं –11